नईदुनिया

भोपाल, 21 अगस्त 2026

संपादकीय

बुजुर्गों की संपत्ति पर कानून का हस्तक्षेप नहीं

समाज का आईना अक्सर अदालतों के फैसलों में दिखता है। सुप्रीम कोर्ट का ताजा फैसला भी ऐसा ही आईना है, जिसने रिश्तों, कानून और नैतिकता तीनों को सामने रख दिया है। अदालत ने कहा है कि वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम, 2007 के तहत गठित ट्रिब्यूनल को यह अधिकार नहीं है कि वह माता-पिता की संपत्ति से उन्हें बेदखल करके बच्चों के नाम कर दे। माता-पिता की संपत्ति पर बच्चों का स्वत: अधिकार नहीं है, जब तक माता-पिता जीवित रहते हुए उसे स्वयं हस्तांतरित न करें।

फैसला केवल कानूनी व्याख्या नहीं है। यह बदलते सामाजिक ताने-बाने पर टिप्पणी भी है, जहां संपत्ति के लिए रिश्ते दांव पर लग रहे हैं। वरिष्ठ नागरिक अधिनियम का उद्देश्य 60 वर्ष से अधिक आयु के माता-पिता को सम्मानजनक जीवन देना, भोजन, आवास और चिकित्सा उपलब्ध कराना तथा बच्चों की ओर से उपेक्षा होने पर भरण-पोषण दिलाना है। यदि माता-पिता ने देखभाल की शर्त पर संपत्ति हस्तांतरित की और बच्चे उस शर्त को तोड़ें, तो उस हस्तांतरण को रद्द करने का अधिकार भी ट्रिब्यूनल को दिया गया है।

लेकिन समय के साथ इस कानून के दुरुपयोग की आशंका भी सामने आई। कुछ मामलों में ट्रिब्यूनल के आदेशों के जरिए बुजुर्गों को घर से बेदखल करने के प्रयास हुए। सुप्रीम कोर्ट ने इसी प्रवृत्ति पर रोक लगाई है। अदालत ने स्पष्ट किया कि बुजुर्गों का भरण-पोषण और सुरक्षा सुनिश्चित करना जरूरी है, लेकिन उनकी पूरी संपत्ति को जबरन बच्चों के नाम करने की शक्ति ट्रिब्यूनल के पास नहीं है। यह फैसला व्यक्तिगत स्वायत्तता के सिद्धांत को मजबूत करता है। किसी व्यक्ति ने जीवन भर मेहनत से जो संपत्ति बनाई है, उस पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार उसी का होना चाहिए। वह चाहे तो उसे दान करे, बेचे या अपने पास रखे। राज्य या कोई ट्रिब्यूनल उसकी जगह यह तय नहीं कर सकता।

संयुक्त परिवारों के टूटने, शहरीकरण और आर्थिक दबाव के कारण माता-पिता और बच्चों के रिश्तों में दूरी बढ़ी है। कई मामलों में बच्चे संपत्ति अपने नाम करवाने के बाद माता-पिता को अकेला छोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में कानून का हस्तक्षेप जरूरी है, लेकिन उसकी सीमा भी तय होनी चाहिए। कानून बुजुर्गों को भूखा और बेघर होने से बचाए, लेकिन उनकी संपत्ति का मालिक न बन जाए।

अब सरकार और समाज की जिम्मेदारी है कि कानून को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। अकेले रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित हो और दुर्व्यवहार की शिकायतों पर तत्काल कार्रवाई हो। सामाजिक संस्थाएं भी बुजुर्गों को कानूनी परामर्श, स्वास्थ्य सेवाएं और भावनात्मक सहारा उपलब्ध कराने में भूमिका निभा सकती हैं।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या हम रिश्तों को केवल संपत्ति के चश्मे से देखेंगे? माता-पिता ने हमें पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया। अब जब वे कमजोर हैं तो उनकी देखभाल हमारी जिम्मेदारी है। यह कोई सौदा नहीं, बल्कि हमारा नैतिक दायित्व है। सुप्रीम कोर्ट का फैसला संतुलित है। यह बुजुर्गों को सुरक्षा देने के साथ उनकी संपत्ति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी रक्षा करता है। कोई कानून संस्कारों की जगह नहीं ले सकता। परिवार में प्रेम, सम्मान और सेवा का भाव होगा तो अदालत और ट्रिब्यूनल की जरूरत कम होगी। हमें तय करना है कि अपने बुजुर्गों को संपत्ति का विवाद देंगे या अपनापन।

आजकल

स्पीड ब्रेकर बने दर्द बढ़ाने के रास्ते

मध्यप्रदेश हाईकोर्ट ने केंद्र और राज्य सरकार को नोटिस भेजकर पूछा है कि प्रदेश की सड़कों पर अवैध और गैर-मानक स्पीड ब्रेकर क्यों बने हुए हैं। जबलपुर के एक अधिवक्ता की जनहित याचिका में कहा गया है कि सुरक्षा के नाम पर बनाए गए ये ब्रेकर लोगों की कमर तोड़ रहे हैं और वाहनों को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

स्पीड ब्रेकर का उद्देश्य भीड़भाड़ वाले इलाकों में वाहनों की गति नियंत्रित करना है, ताकि पैदल चलने वाले, बच्चे और बुजुर्ग सुरक्षित रहें। लेकिन जब इन्हें नियमों को ताक पर रखकर बनाया जाता है तो सुरक्षा का साधन ही खतरा बन जाता है। प्रदेश की अनेक सड़कों पर अचानक ऊंचे ब्रेकर सामने आ जाते हैं। चेतावनी संकेत और पर्याप्त दृश्यता न होने से दोपहिया वाहन चालक संतुलन खो बैठते हैं। गर्भवती महिलाओं और कमर-रीढ़ की समस्या से जूझ रहे लोगों के लिए भी सफर परेशानी भरा हो जाता है।

चार पहिया वाहनों के सस्पेंशन और निचले हिस्से को भी बार-बार लगने वाले झटकों से नुकसान पहुंचता है। एंबुलेंस और दमकल जैसी आपात सेवाओं को भी ऐसे ब्रेकरों के कारण गति कम करनी पड़ती है, जिससे कीमती समय बर्बाद होता है।

समस्या की जड़ जवाबदेही का अभाव है। कई जगह निजी लोग या कॉलोनियां बिना अनुमति ब्रेकर बना देती हैं, तो कहीं सरकारी एजेंसियां भी मानकों की अनदेखी करती हैं। ऐसे में पूरे प्रदेश में सभी स्पीड ब्रेकरों का सर्वे जरूरी है। गैर-मानक ब्रेकर हटाए जाएं और जरूरत वाले स्थानों पर वैज्ञानिक मानकों के अनुसार ही नए ब्रेकर बनाए जाएं। हर ब्रेकर से पहले चेतावनी बोर्ड, गति सीमा और रिफ्लेक्टिव पेंट अनिवार्य होना चाहिए। स्कूल, अस्पताल और बाजार क्षेत्रों में रंबल स्ट्रिप्स, कैमरे और सड़क डिजाइन में बदलाव जैसे विकल्प भी अपनाए जा सकते हैं।

हाईकोर्ट का नोटिस सरकार के लिए आईना है। सड़क बनाना ही विकास नहीं, उसे सुरक्षित बनाना भी सरकार की जिम्मेदारी है। नागरिकों को सुरक्षित रास्ता देना उनका अधिकार है और इसकी रक्षा करना राज्य का दायित्व।

नेताओं के खिलाफ 4192 मुकदमे न्याय के दरवाजे पर

लगी तारीख पर तारीख की कतार

कहते हैं कानून सबके लिए बराबर होता है, लेकिन जब बात सांसद और विधायक की आती है तो कानून भी शायद चाय पीकर सुस्ताने लगता है। सुप्रीम कोर्ट में पेश हुई ताजा रिपोर्ट ने फिर से याद दिलाया कि हमारे जनप्रतिनिधियों के सिर पर मुकदमों का मुकुट कितना भारी है। देशभर में सांसदों और विधायकों के खिलाफ कुल 4192 आपराधिक मामले लंबित हैं और इनमें से 519 मामले ऐसे हैं, जिनकी उम्र दस साल से ज्यादा हो चुकी है। यानी ये मुकदमे इतने पुराने हैं कि इनके साथ पैदा हुए बच्चे अब वोट देने लायक हो गए होंगे। न्यायालय अब अदालत कम और अतिथि गृह ज्यादा बन गए हैं, जहां मुकदमे आते हैं, चाय पीते हैं और अगली तारीख लेकर चले जाते हैं। आंकड़ों का खेल भी कम दिलचस्प नहीं है। 519 मामले दस साल पुराने हैं, 754 मामले पांच साल से अधिक पुराने हैं।

रिपोर्ट के अनुसार, 4192 में से 519 मामले दस साल से अधिक पुराने हैं, 754 मामले पांच से दस साल के बीच हैं, 562 मामले तीन से पांच साल के हैं और 1094 मामले तीन साल से कम पुराने हैं। नए मामले तो आते ही जा रहे हैं और पुराने मामले विदा लेने का नाम नहीं ले रहे। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी शादी में मेहमान आते जाएं, लेकिन कोई जाता न हो और अंत में घर में पैर रखने की जगह न बचे। सबसे मजेदार बात यह है कि ये आंकड़े हर साल थोड़े-थोड़े बढ़ते जाते हैं। पिछले साल 4000 थे, इस साल 4192 हो गए। अगले साल शायद 4500 हो जाएं। लगता है मुकदमों की भी जनसंख्या बढ़ रही है।

राज्यवार सूची देखें तो उत्तर प्रदेश ने 1094 मामलों के साथ बाजी मार ली है। महाराष्ट्र 543 के साथ दूसरे नंबर पर है। बिहार 373 और पश्चिम बंगाल 364 के साथ मैदान में डटे हैं। दक्षिण में भी प्रतिस्पर्धा कम नहीं है। केरल में 543 और तमिलनाडु में 330 मामले हैं। लगता है हर राज्य अपने जनप्रतिनिधियों को मुकदमों का तोहफा देने में लगा है। कुछ छोटे राज्य जैसे हिमाचल और सिक्किम में मामले कम हैं। शायद वहां नेताओं के पास मुकदमा करने का समय नहीं है या फिर वहां के वकील इतने व्यस्त हैं कि नया केस लेने से मना कर देते हैं।

इन 4192 मामलों में क्या नहीं है? हत्या, हत्या का प्रयास, अपहरण, फिरौती, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, दंगा और चुनाव में गड़बड़ी के आरोप भी शामिल हैं। कुछ नेता ऐसे हैं, जिनके खिलाफ इतने मामले हैं कि अगर एक फाइल गिरे तो दूसरी अपने आप खुल जाती है और कुछ ऐसे हैं, जिनके नाम सुनते ही पुलिस भी कहती है, अरे, ये फिर आ गए। सुप्रीम कोर्ट ने कई बार चिंता जताई है कि आपराधिक छवि वाले लोग जब कानून बनाने बैठेंगे तो कानून की हालत क्या होगी। लेकिन जवाब में दलों का तर्क होता है कि जनता ने चुना है, हम क्या करें।

इस समस्या को सुलझाने के लिए सुप्रीम कोर्ट के कहने पर फास्ट ट्रैक कोर्ट बनाए गए। दिल्ली में एक विशेष अदालत और बाकी राज्यों में भी अलग बेंच बनीं। उद्देश्य था कि एक साल में निपटारा हो जाए, लेकिन हकीकत यह है कि फास्ट ट्रैक की ट्रेन भी भारतीय रेल की तरह लेट चल रही है। गवाह नहीं आते, वकील तारीख मांगते हैं और जज कहते हैं- अगली तारीख। फास्ट ट्रैक कोर्ट भी धीरे-धीरे स्लो ट्रैक बन गए।

इन मुकदमों की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आरोप तय होने तक नेता आराम से संसद और विधानसभा में भाषण देते हैं, कानून बनाते हैं और जनता को नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। वहीं दूसरी तरफ पीड़ित परिवार अदालत के चक्कर काटते-काटते थक जाते हैं। कुछ के केस में गवाह मुकर जाते हैं, कुछ के सबूत गायब हो जाते हैं और कुछ बस हार मानकर बैठ जाते हैं। कानून कहता है कि जब तक दोष साबित न हो, तब तक सब निर्दोष हैं, लेकिन दस-दस साल तक निर्दोष बने रहने का रिकॉर्ड भी अपने आप में एक उपलब्धि है।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि राजनीतिक दल क्या कर रहे हैं? जवाब है-कुछ नहीं। चुनाव आता है तो टिकट बंटते हैं और अक्सर सबसे चर्चित नाम वही होते हैं, जिनके नाम के आगे कई धाराएं लगी हों। दल कहते हैं कि जनता चुनती है, लेकिन जनता के पास विकल्प भी तो वही होते हैं, जिन्हें दल मैदान में उतारते हैं। यह उसी तरह है जैसे मेन्यू में केवल दो डिश हों और दोनों में मिर्च ज्यादा हो। मतदाता बेचारा सोचता है, चलो कम मिर्च वाला चुन लेते हैं।

यह कहना भी गलत होगा कि सिर्फ नेता दोषी हैं। अदालतों पर पहले से ही मामलों का पहाड़ है। जजों की कमी है, स्टाफ कम है, बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं। एक जज के पास हजारों फाइलें हैं। ऐसे में सांसद-विधायक के केस को प्राथमिकता दें तो आम आदमी का केस और लटक जाएगा। सिस्टम को मजबूत किया जाए, नए जज भर्ती हों, तकनीक का इस्तेमाल हो और अनावश्यक तारीखों पर लगाम लगे। सोचिए, एक तरफ देश डिजिटल इंडिया की बात कर रहा है, दूसरी तरफ अदालतों में फाइलें धूल खा रही हैं। एक तरफ नेता भ्रष्टाचार के खिलाफ भाषण देते हैं, दूसरी तरफ उनके खिलाफ भ्रष्टाचार के केस दस साल से लंबित हैं। यह कैसा लोकतंत्र है, जहां कानून बनाने वाले ही कानून के कटघरे में खड़े हैं और कटघरा भी कहता है, सर, आप बैठिए, चाय पिएंगे। 4192 का आंकड़ा केवल संख्या नहीं है। यह हमारे सिस्टम की हकीकत है। यह बताता है कि राजनीति, अपराध और न्याय के बीच का रिश्ता कितना उलझा हुआ है। अगर 519 दस साल पुराने मामले एक साल में निपट जाएं तो शायद जनता का भरोसा लौट आए। अगर राजनीतिक दल साफ छवि वाले लोगों को टिकट दें तो शायद नए मामले कम हों। लेकिन जब तक नेता वादे करेंगे, वकील तारीख लेंगे और अदालतें इंतजार करेंगी, तब तक यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहेगा। जनता के पास एक ही हथियार है-वोट। इस बार सोच-समझकर देना होगा, क्योंकि जिस दिन जनता जागरूक हो जाएगी, उस दिन न सिर्फ मुकदमे कम होंगे, बल्कि मुकदमे वाले नेता भी कम हो जाएंगे। तब शायद कानून वाकई सबके लिए बराबर होगा और न्याय तारीख पर नहीं, समय पर मिलेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

करियर और आर्थिक दबाव के चलते बढ़ रहे तलाक, महिलाएं नहीं चाहतीं रिश्तों में समझौता

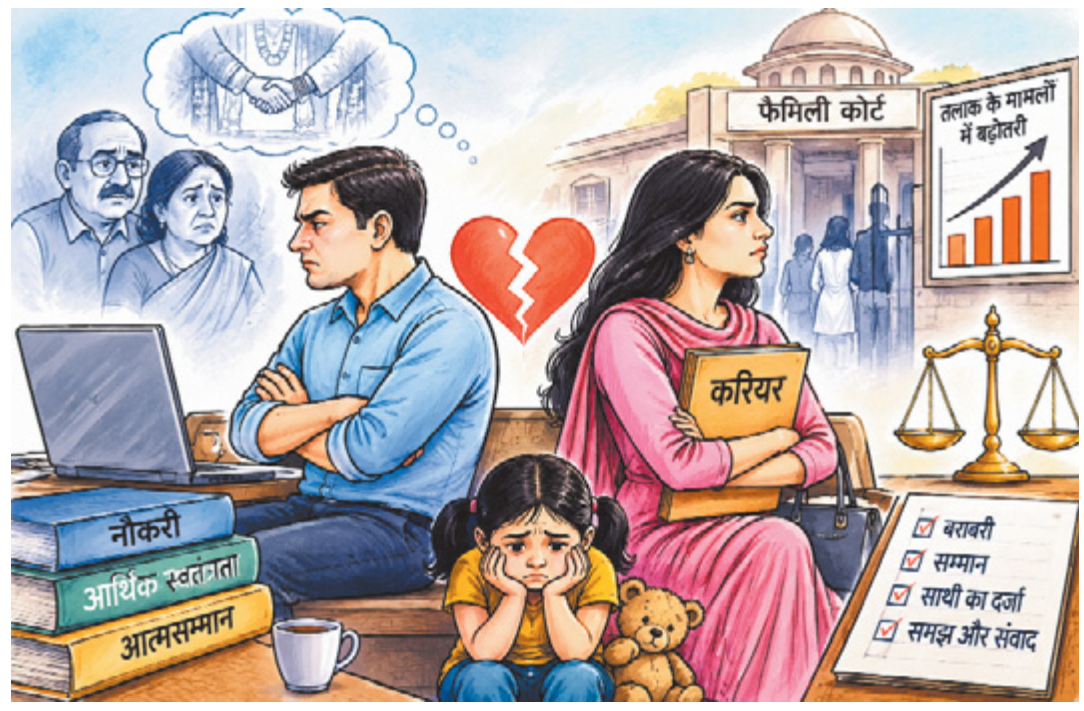

कहा जाता था कि शादी सात जन्मों का बंधन है, लेकिन आज के समय में यह बंधन उतना मजबूत नहीं दिख रहा, जितना पहले था। मध्यप्रदेश के भोपाल और इंदौर के फैमिली कोर्ट के आंकड़े बताते हैं कि तलाक के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि इन मामलों में अब महिलाएं खुद पहल कर रही हैं। पहले जहां महिलाएं रिश्ते बचाने के लिए समझौता करती थीं, वहीं अब वे करियर, आर्थिक स्वतंत्रता और सम्मान को प्राथमिकता दे रही हैं।

समाज में महिलाओं की भूमिका बदल गई है। पढ़ी-लिखी महिलाएं नौकरी कर रही हैं, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं और अब वे ऐसे रिश्ते नहीं निभाना चाहतीं, जहां उन्हें दबाया जाए या सम्मान न मिले। इसी वजह से तलाक अब टैबू नहीं रहा, बल्कि एक विकल्प बन गया है।

भोपाल में एक एनजीओ में काम करने वाली महिला और बैंक में पदस्थ उसके पति की शादी 2015 में हुई थी। शादी के समय सब कुछ ठीक था, लेकिन कुछ साल बाद पति ने शर्त रखी कि पत्नी नौकरी छोड़ दे और घर संभाले। महिला ने साफ मना कर दिया। उसने कहा कि उसकी पहचान केवल पत्नी होने से नहीं है। उसके अपने सपने हैं, उसका अपना करियर है। 2022 में बात इतनी बढ़ गई कि दोनों अलग रहने लगे और आखिरकार तलाक की अर्जी अदालत में दे दी गई। इस मामले में कोर्ट ने भी माना कि किसी को जबरदस्ती करियर छोड़ने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

इंदौर में एक दूसरा मामला सामने आया, जहां पति ने पत्नी पर घर न संभालने का आरोप लगाकर तलाक मांगा। पत्नी का कहना था कि वह बच्चों की पढ़ाई और घर का काम दोनों देख रही है, लेकिन पति और ससुराल वाले चाहते थे कि वह 24 घंटे घर में ही रहे और बाहर न निकले। महिला ने अदालत में कहा कि अगर उसे घर की चारदीवारी में बंद रहना है तो वह ऐसा जीवन नहीं जीना चाहती। कोर्ट ने इस मामले में भी महिला के पक्ष को सुना और कहा कि विवाह का मतलब गुलामी नहीं है।

पहले महिलाओं के पास आर्थिक विकल्प नहीं थे, इसलिए वे कई बार प्रताड़ना सहकर भी रिश्ता निभाती थीं। लेकिन अब स्थिति बदल गई है। नौकरी करने वाली महिलाएं आर्थिक रूप से मजबूत हैं और वे अपने फैसले खुद ले सकती हैं। अब महिलाएं दहेज या घरेलू हिंसा के कारण ही नहीं, बल्कि मानसिक तनाव, करियर में रुकावट और बराबरी न मिलने के कारण भी तलाक मांग रही हैं।

एक काउंसलर ने बताया कि पहले महिलाएं कहती थीं कि बच्चों के लिए सब सह लेंगे, लेकिन अब वे कहती हैं कि अगर माहौल खराब है तो बच्चों पर भी उसका बुरा असर पड़ेगा। इसलिए अलग होना बेहतर है। समाज की सोच में भी धीरे-धीरे बदलाव आ रहा है। पहले तलाकशुदा महिलाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन अब लोग समझने लगे हैं कि अगर रिश्ता बोझ बन जाए तो उसे ढोने से बेहतर है उसे सम्मान के साथ खत्म करना। शहरों में तो यह बदलाव साफ दिख रहा है, लेकिन गांवों में अभी भी बहुत काम करना बाकी है। वहां महिलाओं को अब भी परिवार और समाज के दबाव में रहना पड़ता है।

यह भी सच है कि तलाक के मामलों में पुरुष भी परेशान हो रहे हैं। कई पुरुषों का कहना है कि महिलाएं छोटी-छोटी बातों पर तलाक मांग रही हैं और परिवार टूट रहे हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि समस्या छोटी-बड़ी नहीं होती। समस्या संवाद की कमी और एक-दूसरे की भावनाओं की कदर न करने से होती है। अगर पति-पत्नी एक-दूसरे की महत्वाकांक्षा और स्वतंत्रता का सम्मान करें तो बहुत से रिश्ते बच सकते हैं।

फैमिली कोर्ट में अब काउंसलिंग को भी महत्व दिया जा रहा है। भोपाल और इंदौर में हर महीने सैकड़ों मामले आते हैं, लेकिन काउंसलिंग के बाद कुछ मामले वापस भी होते हैं। न्यायाधीशों का कहना है कि तलाक अंतिम विकल्प होना चाहिए। पहले दोनों पक्षों को बैठाकर बातचीत करनी चाहिए। अगर बात नहीं बनती तो ही अलगाव का रास्ता अपनाना चाहिए। सबसे बड़ा सवाल बच्चों का है। तलाक के बाद बच्चों की परवरिश और उनकी मानसिक स्थिति पर सबसे ज्यादा असर पड़ता है। तलाक के बाद भी माता-पिता को बच्चों के लिए मिलकर काम करना चाहिए, ताकि बच्चे असुरक्षित महसूस न करें।

तलाक के बढ़ते मामलों को देखकर घबराने की जरूरत नहीं है। यह समाज के बदलने का संकेत है। महिलाएं अब अपने पैरों पर खड़ी हैं और वे किसी भी कीमत पर आत्मसम्मान से समझौता नहीं करना चाहतीं। शादी से पहले लड़के-लड़कियों को रिश्तों की समझ दी जाए। स्कूल-कॉलेज में वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियों पर चर्चा होनी चाहिए।

परिवारों को भी अपनी सोच बदलनी होगी। बेटियों को केवल घर संभालने के लिए नहीं, बल्कि अपने सपनों के लिए भी तैयार करना होगा और बेटों को यह सिखाना होगा कि पत्नी साथी है, नौकर नहीं। तलाक के आंकड़े डराने वाले हैं, लेकिन इसके पीछे की वजह को समझना जरूरी है। महिलाएं अब कमजोर नहीं हैं। वे शिक्षित हैं, कमाती हैं और अपने फैसले ले सकती हैं। अगर समाज और परिवार इस बदलाव को स्वीकार कर लें और रिश्तों में बराबरी और सम्मान को जगह दें तो शायद तलाक के मामले कम हो सकते हैं। वरना आने वाले समय में कोर्ट के चक्कर और बढ़ेंगे और परिवार नाम की संस्था और कमजोर होगी। इसलिए समय रहते संवाद को बढ़ाना होगा, समझ को बढ़ाना होगा और सबसे जरूरी, एक-दूसरे को इंसान समझना होगा। तभी रिश्ते टिक पाएंगे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

नीट विवाद पर सुप्रीम कोर्ट सख्त, हिंसा के कारण तलाशने हाई पावर जांच

जंतर-मंतर प्रदर्शन मामले में बनी विशेष कमेटी

मेडिकल प्रवेश परीक्षा नीट का पेपर लीक होने की खबरों के बाद देशभर के छात्र सड़कों पर उतर आए थे। दिल्ली के जंतर-मंतर, पटना समेत कई शहरों में बड़े प्रदर्शन हुए। कुछ जगहों पर प्रदर्शन शांतिपूर्ण रहे, लेकिन कुछ स्थानों पर पुलिस और छात्रों के बीच झड़प और हिंसा भी हुई। छात्रों का आरोप था कि पुलिस ने बर्बरता की और बेकसूर छात्रों को गिरफ्तार किया। वहीं दिल्ली पुलिस ने सुप्रीम कोर्ट में कहा कि जवानों ने संयम से काम लिया और न्यूनतम बल का प्रयोग किया। पुलिस ने यह भी कहा कि प्रदर्शन में असामाजिक तत्व घुस गए थे और कुछ पुलिसकर्मी भी घायल हुए थे। दोनों पक्षों के दावों में अंतर होने के कारण मामले की वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी।

नीट पेपर लीक के खिलाफ देशभर में हुए विरोध प्रदर्शनों के दौरान हुई हिंसा की अब निष्पक्ष जांच होगी। सुप्रीम कोर्ट ने मंगलवार को बड़ा फैसला लेते हुए कहा कि दिल्ली के जंतर-मंतर और अन्य स्थानों पर हुए प्रदर्शनों से जुड़े सभी मामलों की जांच के लिए एक हाई पावर कमेटी बनाई जाएगी। कोर्ट ने कहा कि इस कमेटी में सुप्रीम कोर्ट के एक सेवानिवृत्त जज, हाई कोर्ट के एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश, एक पूर्व डीजीपी और सीबीआई के एक पूर्व निदेशक शामिल होंगे। कमेटी प्रदर्शन के दौरान पुलिस की कार्रवाई और छात्रों के खिलाफ लगे आरोपों, दोनों की जांच करेगी और समय-समय पर रिपोर्ट सौंपेगी।

मेडिकल प्रवेश परीक्षा नीट का पेपर लीक होने की खबरों के बाद देशभर के छात्र सड़कों पर उतर आए थे। दिल्ली के जंतर-मंतर, पटना समेत कई शहरों में बड़े प्रदर्शन हुए। कुछ जगहों पर प्रदर्शन शांतिपूर्ण रहे, लेकिन कुछ स्थानों पर पुलिस और छात्रों के बीच झड़प और हिंसा भी हुई। छात्रों का आरोप था कि पुलिस ने बर्बरता की और बेकसूर छात्रों को गिरफ्तार किया। वहीं दिल्ली पुलिस ने सुप्रीम कोर्ट में कहा कि जवानों ने संयम से काम लिया और न्यूनतम बल का प्रयोग किया। पुलिस ने यह भी कहा कि प्रदर्शन में असामाजिक तत्व घुस गए थे और कुछ पुलिसकर्मी भी घायल हुए थे। दोनों पक्षों के दावों में अंतर होने के कारण मामले की वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी।

इन्हीं परस्पर विरोधी दावों के कारण कोर्ट ने स्वतंत्र जांच जरूरी समझी। हाई पावर कमेटी का मुख्य काम यह पता लगाना है कि प्रदर्शन के दौरान हिंसा कैसे भड़की, किसने पहले हमला किया, पुलिस ने बल प्रयोग के तय नियमों का पालन किया या नहीं और क्या प्रदर्शन में बाहरी तत्व शामिल थे। कमेटी यह भी देखेगी कि प्रदर्शनकारियों के खिलाफ दर्ज मामलों और पुलिस की कार्रवाई में कहीं अनावश्यक कठोरता तो नहीं बरती गई। साथ ही पुलिस का पक्ष भी जांच के दायरे में रहेगा, ताकि किसी भी पक्ष के दावे को बिना जांच के सही या गलत न माना जाए। कमेटी अपनी जांच रिपोर्ट सीधे सुप्रीम कोर्ट को देगी। रिपोर्ट के आधार पर कोर्ट आगे की कार्रवाई और जरूरी निर्देश जारी करेगा।

यह जांच छात्रों और व्यवस्था, दोनों के लिए अहम है। कानून विशेषज्ञों का मानना है कि यह फैसला छात्रों के लिए राहत है, क्योंकि अब उन्हें निष्पक्ष जांच का भरोसा मिला है। वहीं पुलिस के लिए भी यह अवसर है कि वह अपनी कार्रवाई को सही साबित कर सके। यदि जांच में पुलिस की कार्रवाई नियमों के अनुरूप पाई जाती है तो उस पर लगे आरोपों की स्थिति भी स्पष्ट होगी और यदि कहीं नियमों का उल्लंघन सामने आता है तो जिम्मेदारी तय की जा सकेगी।

नीट पेपर लीक की घटना ने पहले ही लाखों छात्रों के भविष्य पर सवाल खड़े कर दिए थे। मेडिकल प्रवेश परीक्षा में सफलता के लिए छात्र वर्षों तक मेहनत करते हैं।

ऐसे में परीक्षा की प्रक्रिया पर उठने वाला कोई भी सवाल उनके भरोसे को प्रभावित करता है। पेपर लीक के आरोपों के बाद छात्रों में आक्रोश बढ़ा और देश के अलग-अलग हिस्सों में विरोध प्रदर्शन हुए। अब इस मामले में पारदर्शी जांच से शिक्षा व्यवस्था पर लोगों का भरोसा फिर बहाल हो सकेगा।

इस पूरे मामले में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विरोध प्रदर्शन और कानून-व्यवस्था के बीच संतुलन बना रहे। छात्रों को अपनी बात रखने और शांतिपूर्ण प्रदर्शन करने का अधिकार है, लेकिन हिंसा की स्थिति में कानून-व्यवस्था बनाए रखना भी जरूरी है। इसी तरह पुलिस की जिम्मेदारी है कि वह प्रदर्शनकारियों से निपटते समय तय नियमों और संयम का पालन करे। यदि दोनों पक्ष अपनी सीमाओं का पालन करें तो ऐसी परिस्थितियों को बिगड़ने से रोका जा सकता है।

सुप्रीम कोर्ट का यह कदम स्पष्ट संदेश देता है कि अभिव्यक्ति की आजादी और कानून-व्यवस्था, दोनों जरूरी हैं। किसी भी घटना में केवल आरोपों के आधार पर निष्कर्ष निकालने के बजाय निष्पक्ष जांच के जरिए तथ्य सामने आना जरूरी है। हाई पावर कमेटी को भी बिना किसी दबाव के सभी पक्षों को सुनकर अपनी रिपोर्ट देनी होगी।

अब सबकी नजरें हाई पावर कमेटी की रिपोर्ट पर हैं, ताकि प्रदर्शन के दौरान हुई हिंसा की वास्तविक वजह सामने आए, दोषियों की पहचान हो और निर्दोष छात्रों या पुलिसकर्मियों के साथ अन्याय न हो।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)